मैं कौन हूँ

मैं कौन हूँ, आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या ?

क्या मैं मनुष्य हूँ ?

मैं मनुष्य नहीं, देव नहीं, तिर्यंच नहीं, नारकीय नहीं, वरन एक आत्म द्रव्य हूँ। और जो मैं देख रहा हूँ वह एक असमान–जातीय द्रव्य पर्याय है

नियमसारमें कहा भी है:-

मैं नहीं नारक देव मानव, और तिर्यग मैं नहीं।
कर्ता कराता और मैं कर्त्ता अनुमन्ता भी नहीं।।७७।।
बालक तरुण बूढ़ा नहीं इन सभीका कारण नहीं।
कर्ता कराता और मैं कर्त्ता अनुमन्ता भी नहीं।।७९।।

जीव - पुद्गल

आत्मा [जीव]	शरीर [पुद्गल]
जीव	अजीव
अमूर्त	मूर्त
दर्शन, ज्ञान चेतनावाला	रूप ,रस ,गन्ध , वर्ण
नित्य	अनित्य
स्व है	पर है
सुख व आनन्दमय है [शुचि]	अशुचि [अपवित्र]

पंडित द्यानतरायजी ने भी अशुचि शरीरके बारेमें कहा है:-

ऊपर अमल मल भर्‍यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहे।

[दशलक्षन धर्म पूजन]

आत्मद्रव्य की पहिचान

किसी भी द्रव्यको या वस्तु को जानने के लिये उसके लक्षण याने गुण व पर्याय याने अवस्थाओं को जानना जरूरी है।

“ गुण पर्ययवत् द्रव्यम्”

द्रव्य, गुणोंका समुदाय होता है तथा अवस्था रूपसे परिणमन करता रहता है।

तो आत्मा क्या है ?

उसे जानू कैसे ? पहिचानू कैसे ?

पर्याय अथवा दशा

जीव इस संसारमें अलग अलग दशामें पाये जाते हैं।

गति विभागसे चार।

गति	संख्या	क्षेत्र	आयु
मनुष्य	संख्यात	मध्य–लोक	एक समयसे तीन पल्य
देव	असंख्यात	उर्ध–लोक अधो–लोक	१० हजार वर्ष से ३३ सागर
नरक [नारकी]	असंख्यात	अधो–लोक	१० हजार वर्ष से ३३ सागर
तिर्यंच	अनन्त	लोकाकाश	एक समयसे असंख्यात वर्ष

आत्मा के तीन प्रकार

- बहिरात्मा
- अन्तर्आत्मा
- परमात्मा

पंडित दोलतरामजी ने भी छ:ढाला में कहा है:–

बहिरातम , अन्तर-आतम परमातम जीव त्रिधा है।

बहिरात्मा मिथ्यात्व के कारण होते है।

मिथ्यात्व दो प्रकारसे होता है।

१ **अग्रहीत**

२ **ग्रहीत**

ग्रहित- मिथ्यात्व

- एकान्तिक
- विपरीत
- सांशयिक
- अज्ञानिक
- वैनयिक

बहिरात्मा

- १ संयोगिक द्रष्टि वाला। २ परको स्व जानने वाला। ३ देह बुद्धि वाला। ४ पर्यायकी चाह वाला। ५ परको अपना बनानेकी इच्छा वाला।

- समयसार गाथा १२९ में कुन्दकुन्दाचार्य ने कही हैः–

अज्ञानमय को भावसे, अज्ञानमय ही उपजे।
इस हेतुसे अज्ञानीके, अज्ञानमय भावही बने।।१२९।।

- बहिरात्मा की समझ के बारेमैं छःढाला की दूसरी ढालमें कहते हैंः–

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चेन।।५।।
शुभ-अशुभ बंधके फल मझार, रति अरति करे निज पद विसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखे आपको कष्टदान।।६।।

अन्तर्आत्मा [ज्ञानी] की सोच-मैं कैसा हूँ ?

- मैं, पर द्रव्यसे भिन्न, ज्ञानमय, निरावलम्बी, अकर्ता, अनन्त गुणोंकी खान, ऐसा एक द्रव्य हूँ।

नाटक समयसारमें बनारसीदास जी ने कहा है:–

करे करम सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जानेसो करता नहीं होई, करता सो जाने नहीं कोई।

परमात्मा का स्वरूप

- जो आत्मा शुद्ध, निर्मल, निर्बन्ध तथा अरूपी है।

- जो सर्वज्ञ है याने आत्मज्ञ है तथा उपचार से तीनलोक तीनकाल के सब द्रव्यों के गुण व पर्यायों को एक समय में जानते हैं।

- जगतका कल्याण कारक है।

- शिवपद का धारी है यह आत्माकी उत्कृष्ट पर्याय है। और अविनाशी दशा है।

- जो निराकुल सुखके धारी है। परमात्माको पूर्ण आनन्द प्रगट है इसलिये दु:ख नहीं है।

प्रवचनसार गाथा १३ में कुन्दकुन्दाचार्य कहा है कि परमात्मा शुद्धोपयोग निष्पन्न है।

अत्यन्त, आत्मोत्पन्न, विषयातीत अरूप अनन्त है।
विच्छेदहीन है सुख अहो! शुद्धोपयोग प्रसिद्ध है।।

मुझे [अपने को] आत्माको पहचाननेसे क्या लाभ ? तथा यह मैने कहाँ से जाना ?

१ निराकुलता वाले सुखकी व आत्मशान्ति चाह तथा उसकी प्राप्ति।

२ आद्यात्म कवि श्री दोलतरामजी छः ढाला ग्रन्थमें कहते हैं:–

बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजे।
परमातम को ध्याय निरन्तर , जो नित आनन्द पूजे।।

३ अपने को नहीं जाननेसे क्या नुकसान है यह बताते हुए श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं:–

निजरूप जो नहीं जानता, करे पुण्य बस पुण्य।
भ्रमे वो संसार में, शिवसुख कभी न पाय।।१५।।

वे फिर कहते हैं कि निजको जानना ही श्रेष्ठ है:–

निज दर्शन बस श्रेष्ठ है, अन्य न किंचित मान।
हे योगी शिवहेतु तू, निश्चित ही यह जान।।१६।।

४ पूज्यपाद स्वामी समाधीतंत्रकी गाथा ३० में कहते हैं:–

आत्मा अतीन्द्रिय सुखका भंडार है, ऐसी दृष्टिसे विकार की तथा इन्द्रिय विषयोंकी प्रवृत्ति रुक जाती है। तथा पर तरफकी प्रवृत्ति रुक जाने से, उपयोग आत्म स्वरूपमें स्थिर होता है और आत्मा आनन्दमय है ऐसा अनुभव होता है। यही सम्यक्‌दर्शन है। इसीसे परमात्मपद पाया जा सकता है।

इस प्रकार हम सब स्वयंको आत्मा जानकर, भेदज्ञान करके, आत्मसन्मुख होकर, अनुभव प्राप्त करें। तथा परमात्मपद की प्राप्ति करें। कहते हैं:–

तेरा है तुझमें ही है, कहाँ ढूंढता फिरता है।
बाहरसे नहीं लेना देना, स्वयं स्वयंमें रहना है

जय जिनेन्द्र

—Dr. Narendra K Jain